वेदोऽखिलोधर्ममूलम्

ऋग्वेद
यजुर्वेद
सामवेद
अथर्ववेद

वेद प्रकाश

मासिक पत्र (6-7 प्रतिमाह) मूल्यः ५ रुपये (३०/-वार्षिक) मार्च २०१७

कुल पृष्ठ संख्या २०, वजनः 40 ग्राम
प्रकाशन तिथिः 4 मार्च 2017

अन्तःपथ

'गोमाता विश्व की पूजनीय क्यों है?'	३ से ७
—मनमोहन कुमार आर्य,	
वैदिक ज्ञान से जीवन आनन्दमय	७ से १३
—मृदुला अग्रवाल	
आधुनिक स्त्री-पुरुष वैदिक संस्कृति से अनभिज्ञ	१३ से १६
—मृदुला अग्रवाल	
मन को पापों से बचाओ	१६ से १७
ईश्वर पूजा का वैदिक स्वरूप	१८ से १९
—पं० रामचन्द्र देहलवी	

स्वाहा का अर्थ

* अच्छा, मीठा, कल्याणकारी, प्रिय वचन बोलना चाहिए।
* जैसी बात ज्ञान में वर्त्तमान हो,
वैसी सत्य बात ही बोलनी चाहिए।
* अपने पदार्थ को ही अपना कहना चाहिए।
* सुगन्धित, मीठे, पुष्टिकारक
और औषधीय द्रव्यों का हवन करना चाहिए।

बोध कथा

एक बच्चे को आम का पेड़ बहुत पसंद था। जब भी फुर्सत मिलती वो आम के पेड़ के पास पहुंच जाता। पेड़ के ऊपर चढ़ता, आम खाता, खेलता और थक जाने पर उसी की छाया में सो जाता। उस बच्चे और आम के पेड के बीच एक अनोखा रिश्ता बन गया।

बच्चा जैसे-जैसे बड़ा होता गया वैसे-वैसे उसने पेड़ के पास आना कम कर दिया। कुछ समय बाद तो बिल्कुल ही बंद हो गया। आम का पेड़ उस बालक को याद करके अकेला रोता।

एक दिन अचानक पेड़ ने उस बच्चे को अपनी तरफ आते देखा और पास आने पर कहा, "तू कहां चला गया था? मैं रोज तुम्हें याद किया करता था। चलो आज फिर से दोनों खेलते हैं।"

बच्चे ने आम के पेड़ से कहा, "अब मेरी खेलने की उम्र नहीं है, " मुझे पढ़ना है, लेकिन मेरे पास फीस भरने के पैसे नहीं हैं।" पेड़ ने कहा, "तू मेरे आम लेकर बाजार में बेच दे, इससे जो पैसे मिलें अपनी फीस भर देना।"

उस बच्चे ने आम के पेड़ से सारे आम तोड़ लिए और उन सब आमों को लेकर वहां से चला गया। उसके बाद फिर कभी दिखाई नहीं दिया। आम का पेड़ उसकी राह देखता रहता।

एक दिन वो फिर आया और कहने लगा, "अब मुझे नौकरी मिल गई है, मेरी शादी हो चुकी है, मुझे मेरा अपना घर बनाना है, इसके लिए मेरे पास अब पैसे नहीं हैं।"

आम के पेड़ ने कहा, "तू मेरी सभी डाली को काट कर ले जा, उससे अपना घर बना ले।" उस जवान ने पेड़ की सभी डाली काट लीं और ले कर चला गया। आम के पेड़ के पास अब कुछ नहीं था वो अब बिल्कुल बंजर हो गया था।

कोई उसे देखता भी नहीं था। पेड़ ने भी अब वो बालक/जवान उसके पास फिर आयेगा यह उम्मीद छोड़ दी थी। फिर एक दिन अचानक वहाँ एक बुढ़ा आदमी आया। उसने आम के पेड़ से कहा, "शायद आपने मुझे नहीं पहचाना, मैं वही बालक हूं जो बार-बार आपके पास आता और आप हमेशा अपने टुकड़े काटकर भी मेरी मदद करते थे।"

आम के पेड़ ने दु:ख के साथ कहा, "पर बेटा मेरे पास अब ऐसा कुछ भी नहीं जो मैं तुम्हें दे सकू।" वृद्ध ने आंखों में आंसू लिए कहा, "आज मैं आपसे कुछ लेने नहीं आया हूं बल्कि आज तो मुझे आपके साथ जी भरके खेलना है, आपकी गोद में सर रखकर सो जाना।"

इतना कहकर वो आम के पेड़ से लिपट गया और आम के पेड़ की सुखी हुई डाली फिर से अंकुरित हो उठीं।

वो आम का पेड़ हमारे माता-पिता हैं। जब छोटे थे उनके साथ खेलना अच्छा लगता था। जैसे-जैसे बड़े होते चले गये उनसे दूर होते गये। पास भी तब आये जब कोई जरूरत पड़ी, कोई समस्या खड़ी हुई। आज कई माँ बाप उस बंजर पेड़ की तरह अपने बच्चों की राह देख रहे हैं। जाकर उनसे लिपटें, उनके गले लग जायें फिर देखना वृद्धावस्था में उनका जीवन फिर से अंकुरित हो उठेगा।

वेदप्रकाश

वेदप्रकाश

संस्थापक : **स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द**

वर्ष ६६ अंक ८ वार्षिक मूल्य : तीस रुपये, एक प्रति ५ रुपये, मार्च, २०१७

सम्पा॰ **अजयकुमार** पूर्व सम्पादक : स्व॰ **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

'गोमाता विश्व की पूजनीय क्यों है?

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

संसार में जड़ व चेतन दो प्रकार के पदार्थ हैं। चेतन पदार्थ भी दो प्रकार के हैं। प्रथम ईश्वर जिसने इस सृष्टि को रचा है और दूसरे चेतन पदार्थ जीवात्मायें हैं जो सूक्ष्म, अनादि, अविनाशी, अमर, नित्य, एकदेशी, अणुमात्र, ज्ञान व कर्म की सामर्थ्य से युक्त, ससीम व अल्पज्ञ हैं। ज्ञान व गति यह दो मुख्य स्वाभाविक गुण जीवात्मा के हैं। संसार में जीवात्माओं की संख्यायें अनन्त हैं। ईश्वर की दृष्टि में जीवात्माओं की संख्या उसको ज्ञात होने से सीमित कह सकते हैं। जीवात्मा का स्वरूप जन्म व मरण धर्मा है। जीवात्मा को जन्म इसके पूर्व जन्मों के कर्मानुसार ईश्वरीय व्यवस्था से मिलता है। जब किसी जीवात्मा की मनुष्य योनि में मृत्यु होती है तो उसे अपने कर्मों के सुख व दुःख रूपी फलों को भोगना होता है। परमात्मा उनके कर्मानुसार उसे मनुष्य व इतर पशु आदि योनियों में जन्म देता है जिससे वह अपने किये हुए पूर्व कर्मों का यथोचित, न कम न अधिक, फल भोग ले। हम सब जानते हैं कि पशुओं में गाय भी एक पशु है। वैदिक धर्म में गाय को विश्व की माता कहा है जो कि उसके गुणों, मनुष्यों व प्रकृति को होने वाले लाभों की दृष्टि से उचित ही है। सृष्टि के आरम्भ से ही गो सभी मनुष्यों को अपने दुग्ध से पुष्ट व पोषित करती आ रही है। जिस प्रकार जीवात्मा का माता के गर्भवास में उसके भोजन व रुधिर आदि से शरीर बनता है, उसी प्रकार से हमारा शरीर भी अन्न व फलों सहित गोमाता के गोदुग्ध से बना हुआ है। अन्न व फलों की तुलना में गोदुग्ध अल्प प्रयास से प्रचुर व आवश्यक मात्रा में सुलभ हो जाता है और गुणवत्ता में भी यह सर्वश्रेष्ठ होने से इसकी दात्री गोमाता पूजनीय एवं वन्दनीय हो जाती है।

मनुष्य जीवन की आवश्यकताओं में प्रमुख आवश्यकता भोजन ही है। यदि उसे भोजन प्राप्त न हो तो भोजन से प्राप्त होने वाली शक्ति के अभाव में वह कुछ काम नहीं कर सकता। अन्न, फलों, वनस्पतियों व सब्जियों सहित गोदुग्ध का अपना महत्त्व है। अलग-अलग प्रकार के अन्न से शरीर को अलग-अलग प्रकार के पौष्टिक तत्व प्राप्त होते हैं परन्तु गोदुग्ध पूर्ण आहार है जिसका सेवन करने से, यदि अन्न व फल आदि न भी मिले तो भी, मनुष्य न केवल जीवित ही रहता है अपितु निरोग रहते हुए जीवन के सभी कार्य कर सकता है। गो माता की सन्तानें जिस प्रकार आरम्भ में गोदुग्ध पर पूरी तरह से निर्भर होती हैं और उनका विकास भली भांति होता है, इसी प्रकार गोदुग्ध से मनुष्य भी भोजन के सभी प्रकार के तत्वों को प्राप्त कर स्वस्थ व शक्तिशाली बनता है। गोदुग्ध के इसी गुण के कारण वेदों ने गो की महिमा का बखान किया है जिससे मनुष्य उसे जानकर गोपालन व गोसेवा करके सुखी स्वस्थ जीवन व लम्बी आयु प्राप्त कर सके। गोदुग्ध का सेवन करने वालों में रोगों से लड़ने की अद्भुत शक्ति होती है। वह कभी रूग्ण नहीं होते और यदि हो भी जायें तो शीघ्र ही स्वस्थ हो जाते हैं। गोदुग्ध अमृत के समान महोषधि है जो निरोग रखने व रोगों को दूर भगाने में लाभप्रद होती है। गोदुग्ध से अनेक स्वादिष्ट, स्वास्थ्यप्रद व शक्तिवर्धक पदार्थ दही, मक्खन, मट्ठा, घृत, पंचगव्य आदि पदार्थ बनते हैं। गोघृत से अग्निहोत्र करने से पर्यावरण शुद्ध रहता है व प्रदूषण दूर होता है। अनेक साध्य व असाध्य कोटि के रोगों में भी गोघृत से अग्निहोत्र करने से लाभ होता है। वैदिक धर्म में अग्निहोत्र का दैनिक कर्तव्यों में विधान है। इससे अर्जित पुण्य से न केवल वर्तमान जीवन सुखदायक बनता है अपितु इसके फल से हमारा आगामी भावी पुनर्जन्म भी उन्नत व सुखी होता है।

गोदुग्ध के साथ ही गोमूत्र भी औषधीय गुणों से समाविष्ट है। गोमूत्र के सेवन से उदर कृमियों पर लाभकारी प्रभाव होने के साथ त्वचा आदि के अनेक रोग दूर होते हैं। खेती वा कृषि में खाद व कृमियों के नाश के लिए भी गोबर व गोमूत्र आदि का प्रयोग उपयोगी होता है। गोबर व गोमूत्र से बनी खाद स्वादिष्ट व स्वास्थ्यवर्धक अन्न उत्पन्न करने में सर्वाधिक लाभकारी होती है। रासायनिक खाद का प्रयोग करने से अनेक शारीरिक रोग होते हैं और इस पर

धन भी बहुत व्यय होता है। गोबर से ग्रामीण अपनी झोपड़ीनुमा कच्चे निवासों में लेपन करते हैं जिससे स्वच्छता व शुद्धि सम्पदित होती है। गोबर के उपले बनाकर रसोई के लिए ईधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। अन्य सभी प्रकार के ईधन वायु प्रदूषण करने के साथ भोजन पकाने वाले पर भी अपना दुष्प्रभाव डालते हैं जबकि गोबर का ईधन के रूप में प्रयोग अन्य ईधनों से कहीं ज्यादा सुरक्षित होता है। इससे जो धुआं होता है वह वनस्पतियों का सबसे अच्छा भोजन होता है। गोदुग्ध, गोमूत्र व गोबर आदि सभी पदार्थ अर्थ की दृष्टि से भी देश व परिवार के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध होते हैं।

गाय से बछिया या बछड़े होते हैं जो कृषि कार्यों सहित अनेक प्रकार से देश व समाज के लिए उपयोगी होते हैं। गाय अमृत के समान गोदुग्ध देती है जिसके बदले में हमें उसे मात्र प्रकृति में सर्वत्र सुलभ घास आदि वनस्पतियां ही खिलानी होती हैं। आज देश में एक श्रमिक प्रतिदिन 200 से 400 रुपये कमाता है। महीने में यदि उसने 20 दिन काम किया तो उसकी आय 4,000 से 8,000 रुपये ही होती है। इस आय से उसे अपने 5 या 7 परिवार जनों का पालन भी करना होता है और अपनी शारीरिक शक्ति को बनाये रखना होता है। ऐसी स्थिति में वह बाजार में 60 रुपये लिटर वाला दूध नहीं ले सकता। इस आय वाला व्यक्ति शहरों में किराये का एक कमरा भी नहीं ले सकता और न ही अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दे सकता है। ऐसे में यदि किसी निर्धन परिवार में एक या दो गाय हों तो वह उससे दुग्ध की अपनी आवश्यकता पूरी करके शेष दूध को अन्यों में बेचकर अपना निर्वाह कर सकते हैं। इस दृष्टि से गाय का महत्व सर्वाधिक सिद्ध होता है। गाय माता से हमें बैल प्राप्त होते हैं जो खेत जोतने और कृषि के अनेक कार्यों सहित बैलगाड़ी में भी समान ढोने के काम आते हैं। गाय से न केवल गोदुग्ध, गोबर व गोमूत्र ही प्राप्त होते हैं अपितु गाय की स्वाभाविक मृत्यु होने पर उसका चर्म भी हमारे पैरों की रक्षा करता है। इतने उपयोगी जीव वा पशु का प्रत्येक मनुष्य कितना ऋणी है वह वही व्यक्ति जान सकता है जिसकी आत्मा और संस्कार पवित्र हों। आजकल अंग्रेजी व पश्चिमी तौर तरीकों वाली जीवन शैली ने मनुष्य के मन से अंहिसा व सम्वेदना जैसी पवित्र भावनाओं को काफी मात्रा में कम कर दिया है। यहीं कारण है कि पशुओं के प्रति देश व संसार में जो हिंसा होती

है, उसका कहीं कोई विशेष विरोध नहीं करता।

मनुष्य-मनुष्य तभी होता है जब वह अपने प्रत्येक कार्य सोच विचार कर अर्थात् सत्य व असत्य का विचार कर करे। जब हम गाय आदि पशुओं की बात करते हैं तो हमें उसके सुख व दुख पर भी ध्यान देना चाहिये। हमें कांटा लगता है तो हमें दुःख होता है। कोई हमारे प्रति हिंसा का कार्य करता है तो भी हमें दुख होता है। यहां तक कि अनेक लोग रूग्ण होने पर डाक्टर से इंजेक्शन लगवाने में भी डरते हैं। अतः हमें कोई अधिकार नहीं है कि हम गाय वा किसी अन्य पशु का गला कांटे, उसकी हत्या करें व उसका मांस खाये। पशु हत्या व मांसाहार मानव स्वभाव के विपरीत क्रूरता है जिसका कारण अज्ञान व कुसंस्कार है। ऐसे लोग मनुष्य कहलाने योग्य नहीं हैं क्योंकि उनका कार्य मनन व सत्यासत्य का विचार कर नहीं हो रहा है। मांसाहारी लोगों से हम पूछना चाहते हैं कि जब परमात्मा के न्याय के अनुसार तुम्हें भी ऐसे ही कष्टों से गुजरना होगा तो तुम्हें कैसा लगेगा? इस प्रश्न पर शायद कोई विचार करना भी नहीं चाहेगा। परन्तु कर्मफल सिद्धांत के अनुसार ऐसा होता है, ऐसा होगा, यह असम्भव नहीं है। **'अवश्यमेव ही भोक्तत्वयं कृतं कर्म शुभाशुभम्'** के अनुसार हमारे प्रत्येक अच्छे व बुरे कर्म का उसी के अनुरूप, उतनी ही मात्रा में न कम और न अधिक सुख व दुख हमें मिलेगा जैसा हमने इस जीवन में दूसरों के प्रति किया है। जो लोग पशु हिंसा के कार्य में लगे हैं या जो मांस खाते हैं, वह इस पर अवश्य विचार करें। महर्षि मनु ने लिखा है कि मांसाहार की अनुमति देने वाला, पशु की हत्या करने वाला, मांस बेचने वाला, मांस पकाने वाला, मांस परोसने वाला और खाने वाला, यह सब बराबर पाप के भागी हैं। इन सभी लोगों को अपने आगामी पुनर्जन्म पर अवश्य विचार करना चाहिये।

गाय देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी ने **'गोकरुणानिधि'** नाम से एक पुस्तक लिखी है जिसमें गोरक्षा के महत्व सहित गाय से होने वाले आर्थिक लाभों का उल्लेख भी किया है। सत्यार्थप्रकाश के दशम् समुल्लास में भी गोरक्षा के लाभों का वर्णन है। महर्षि ने गणित से गणना करके सिद्ध किया है कि **एक गाय की एक पीढ़ी कुल दूध व बैलों से उत्पन्न अन्न से एक समय में 3,99,760 लोगों का पालन**

होता है। इससे गोरक्षण व गोसंवर्धन के महत्व का अनुमान लगाया जा सकता है। यही कारण था कि महाभारतकाल व उसके कुछ समय बाद तक हमारा देश वीरों व वेद ज्ञानियों की भूमि रहा है। यहां दूध की नदियां बहती थीं। **स्त्री व पुरुष की एक सौ वर्ष की आयु होना आम बात थी। 100 से 160 व उससे भी अधिक आयु के लेग महाभारत काल में रहे हैं।** गाय की ही तरह बकरी की एक पीढ़ी के दूध से भी एक समय में 25,920 लोगों का पालन होता है। गाय व बकरी की ही तरह भैंस, हाथी, घोड़े, ऊंट, भेड़ व गधों से भी अनेक उपकार होते हैं। हमने गाय से कुछ थोड़े से ही लाभों का वर्णन किया है। गाय से होने वाले व्यापक लाभों पर देश मे अनेक ग्रन्थ व पुस्तकें उपलब्ध हैं जिनका अध्ययन किया जाना चाहिये। लेख की समाप्ति पर महर्षि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश से कुछ विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। वह लिखते हैं 'इन गाय आदि पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा। देखो! जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, तभी आर्यावर्त वा अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणि वर्तते थे। क्योंकि बैल आदि पशुओं की वृद्धि होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आकर, गो आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपायी राज्याधिकारी हुए हैं, तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है। क्योंकि **'नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम्।'** कोई मनुष्य कुछ भी व कितना भी कर लें वह ईश्वर, पृथिवी माता व गोमाता के ऋण से जन्म-जन्मान्तरों में भी उऋण नहीं हो सकता।

वैदिक ज्ञान से जीवन आनन्दमय

–मृदुला अग्रवाल, कलकत्ता

परमात्मा ने सृष्टि की रचना की। मानव का निर्माण किया। मानव-कल्याण के लिये चारों वेदों की रचना की। सम्पूर्ण विश्व के इतिहास में वेद ही मानव सभ्यता एवं संस्कृति के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। "Vedas are the first books in the library of mankind." यह हमारे लिये गौरव की बात है कि वेदों का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम भारत में ही हुआ। परमात्मा ने आदि सृष्टि में चार सर्वोत्कृष्ट ऋषियों के हृदय में वेदों का ज्ञान दिया। विदेशी विद्वानों एवं वैज्ञानिकों ने भी

हमारे ही भारत देश से वेदों से, भगवद्-गीता से, उपनिषदों से, रामायण और महाभारत से, चरक-संहिता आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थों से ज्ञान-विज्ञान को चुन-चुनकर अपने-अपने देशों को लाभान्वित किया है। साथ ही विश्व के सभी देशों को भी अनुगृहीत किया है। सुसंस्कृत मानव-जीव हेतु, हमारे भारतीय वेदादि शास्त्र, उपनिषद, स्मृति, ब्राह्मण ग्रन्थ आदि से अमृत रूपी ज्ञान को प्राप्त करने के लिये विदेशी तो यहां मँडराते रहते हैं और हम भारतीय स्वयं अपनी इस धरा के मोल को न समझकर, वेदादि सत्य शास्त्रों से विमुख होकर, आज के भौतिक चकाचौंध में डूबकर अज्ञानतावश अन्धेरे में भटकते जा रहे हैं। प्राचीन वैदिक संस्कृति, सभ्यता, धर्म, भाषा, आचार-विचार, आदर्श इत्यादि आज देश में विलुप्त होते जा रहे हैं। लोग पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति की ओर आकृष्ट होते जा रहे हैं। वहाँ अनैतिकता, हिंसा, स्वछन्द-यौनाचार आदि ने इतना विकराल रूप धारण कर लिया है कि समाज में अशान्ति एवं असंतोष की धारा बह चली है। आये दिन वहाँ के लोग मानसिक रोगों से ग्रस्त होकर मनोवैज्ञानिक डॉक्टरों के यहाँ चक्कर ही काटते रहते हैं।

परन्तु हमारे यहाँ वर्तमान में समाज की अवस्था बहुत संगीन होती जा रही है। आजकल के सामाजिक एवं राजनैतिक ठेकेदारों की तो ऐसी अवस्था है कि प्रयोजन हो तो वेदों में से मन्त्र निकाले और भाषण दे दिये, स्वयं की आदर्शवादिता एवं विद्वता का प्रदर्शन कर दिया। जन प्रयोजन नहीं महसूस हुआ तो पाश्चात्य देशों की सामाजि कुरीतियों को ऐसे अपना लिया जैसे वे भारतीय संविधान का ही एक हिस्सा हों। समलैंगिकता, लिव-इन-रिलेशनशिप (बिना विवाह के स्त्री-पुरुष का साथ रहने का अधिकार), रजिस्टर्ड विवाह, तलाक-प्रथा इन सबको कानून ने ही स्वीकार कर लिया। वैदिक ब्रह्मचर्य एवं संयम की शिक्षा को तो गर्त में ही धकेल दिया।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व राभरत्॥

—अथर्ववेद, काण्ड-११, सूक्त-५, मन्त्र-१९॥

भावार्थ—"ब्रह्मचर्य [वेदाध्ययन और इन्द्रियदमन] तप से विद्वानों ने मृत्यु को हटाकर नष्ट किया है। ब्रह्मचर्य नियम-पालन से ही सूर्य ने उत्तम पदार्थों के लिये सुख अर्थात् प्रकाश को धारण किया है।"

ब्रह्मचारी वीर्य निग्रह आदि तप करता हुआ बलवान होकर पृथिवी पर प्रकाशमान होता है। ब्रह्मचर्य द्वारा ही इन्द्रियों की शक्तियाँ पूर्ण समय तक स्थिर रहती हैं। जीवात्मा ब्रह्मचर्य एवं तप के द्वारा ही इन्द्रियों को सुखी बना सकता है। आत्मा में अनुचित विषयों के भावों तक को नहीं उठने देना भी तो एक प्रकार का ब्रह्मचर्य ही तो है। ब्रह्मचर्य से इन्द्रियाँ नष्ट होने से बच जाती हैं और आनन्दमय भी हो जाती हैं।

बचपन में हम "संस्कार" शब्द अच्छे या बुरे संस्कार सुनते आये हैं। अच्छे संस्कार बचपन से ही गलत कार्यों में प्रवृत्त नहीं करते। बचपन में "सत्यं वद", "धर्म चर", "श्रद्धया देयं" आदि शब्दों को सुनते आये हैं–जो कि सुसंस्कारों एवं सुकर्मों में हमें प्रेरित करते हैं। अगर हम चोरी करना चाहते हैं तो हमें अपने इन कुविचारों को योग-साधना तप आदि से संयम में रखना होगा। शुद्ध सात्विक प्रवृत्ति से जीवात्मा को जोड़ने का नाम संस्कार है।

धार्मिक यौनाचार तो परमात्मा की ही आज्ञा है जो कि पति-पत्नी को संतान-उत्पत्ति हेतु समागम में प्रवृष्ट करता है। समलैंगिक प्रवृत्ति से तो सन्तान-उत्पत्ति हो नहीं सकती जो कि अन्त में असामाजिक आचरण ही कहलाता है। यह तो पति-पत्नी का सत्य प्रेम तो है नहीं, एक तरह की वासना ही है, समाज के लिये शर्मनाक भी है। ऐसी कुवासनाओं का त्याग करके, समलैंगिक भी अपने इस दुर्लभ मनुष्य जीवन को समाज के अन्य सामान्य व्यक्तियों की तरह नियमबद्ध, सफल एवं सुन्दर बना सकते हैं। ब्रह्मचर्य से संयमी होकर एवं वैदिक शिक्षा का अनुसरण करके समलैंगिक भी अपने जीवन को सही दिशा में परिवर्तित कर सकते हैं। जीवन का वास्तविक सुख तो संयम द्वारा ही प्राप्त होता है। वेदों के यथावत् ज्ञान, अभ्यास और इन्द्रियों के दमन से मनुष्य सांसारिक और परमार्थिक उन्नति की परा-सीमा तक पहुँच सकता है।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा।
सम्यज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्॥ –मुण्डक० ३।१।५॥

अर्थात् सत्य, तप, ज्ञान और ब्रह्मचर्य से आत्मा की प्राप्ति होती है एवं आत्म-साक्षात्कार होता है।

वैदिक ज्ञान प्राचीन जरूर है, परन्तु मानव-जीवन के हर पहलू की व्याख्या करता है। वेद के ज्ञान को जीवन से पृथक कर देना ही समाज में

दुर्दशा का कारण है। प्राचीन ऋषि, मुनि वेदज्ञान से मोह-माया त्यागकर सत्याचरण से जीवन को आनन्दमय कर पाये। हम भी उन्हीं ऋषि, मुनि से वेदों का ज्ञान प्राप्त कर अपने पापों का निवारण करें एवं अपनी पशुवत् कुवासनाओं को, अपने आत्मिक दोषों का नाश कर प्रसन्न रहना सीखें।

वैदिक धर्म में एकता है, वहाँ कोई विभाजन नहीं है। प्रत्येक मनुष्य को वेदों को पढ़कर उसकी पावन शिक्षा को आचरण में लाने का समानाधिकार है। वेदों ने आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा हमारे अन्दर छिपी हुई शक्तियों एवं सद्गुणों को जाग्रत किया है। चित्त की शान्ति द्वारा जीवन को संतुलित बनाये रखने की विधि को गम्भीर रूप से पल्लवित किया है। वैदिक ज्ञान के अनुसरण से अन्तःकरण के विकार नष्ट हो जाते हैं, जिससे स्वच्छ हृदय में प्रभु की भक्ति एवं प्रेम विराजमान होकर हमारे जीवन को शाश्वत-आनन्द की ओर प्रवाहित करता है।

"सर्वजनवन्दनीय परमात्मा लोक-लोकान्तरों में वेदों की ज्ञान-गंगा द्वारा सर्वत्र ही अपने मधुर आनन्द की वृष्टि कर रहा है।"

—ऋग्वेद ९।७।२

वैदिक विवाह-पद्धति में पति-पत्नी को आपस में प्रेम, विश्वास, श्रद्धा, मर्यादा एवं कर्त्तव्य-पालन द्वारा समाज को एक सुस्वस्थ, नियमबद्ध संयमी जीवन प्रदान करने की शिक्षा दी है। इस पद्धति को आज के कानून ने ही तिलांजलि दे रक्खी है। रजिस्टर में वर-वधू के हस्ताक्षर करवाये और हो गये पति-पत्नी। इसी तरह तलाक प्रथा को भी इतना सरल एवं सहज बना दिया। सगे-सम्बन्धियों का अशीर्वाद लेते हुए, यज्ञ की अग्नि को साक्षी मानकर, वेद-मन्त्रों का उच्चारण करते हुए जो वैदिक पाणिग्रहण-संस्कार होता है, उसके प्रति आजकल के युवक-युवतियों के मन में कोई श्रद्धा है भी कि नहीं कुछ पता नहीं।

गृभ्णाभि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥

—ऋग्वेद, मंडल—१०, सूक्त-८५, मन्त्र-३६॥

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे॥

—ऋग्वेद, मंडल-१०, सूक्त-८५, मन्त्र-४२

अर्थात्–वैवाहिक स्त्री–पुरुष पाणिग्रहण सौभाग्य के लिये एक–दूसरे को प्रेम–पूर्वक निभावें, कभी विभक्त न हों, पूर्ण आयु तक बेटों, नातियों के संग प्रसन्न रहते हुए गृहस्थ–आश्रम को सुखी बनावें। त्याग (तलाक) का तो निषेध है। सम्बन्ध बुढ़ापे तक का है। बीच में छोड़ा नहीं जा सकता। यह ईश्वर और विद्वानों का नियम है। परिवार में वर–वधू एक साथ रहकर एक–दूसरे को प्राणसम समझें। एक–दूसरे के प्रति, परिवार के प्रति, समाज के प्रति, देश के प्रति अपने कर्त्तव्यों को ईश्वर–विश्वास के साथ निभाते हुए जीवन को आनन्दमय एवं मधुमय बनावें।

प्राचीन काल में नारियों को इतना सम्मान मिलता था कि "नारी! घर की रौनक, समाज की चाँदनी, देश के मस्तक की चमकती हुई बिंदिया" ऐसे सब शब्दों का प्रयोग करके नारे लगाये जाते थे। उन्हें उतनी ही इज्जत से देखा भी जाता था। नारी को पूज्य, गृह की लक्ष्मी एवं माता के रूप में सम्मानित किया जाता था। इसी तरह पुरुष भी पूर्ण रूप से नारी का साथ निभाते हुए देश समाज–परिवार को अच्छे आचरणों से उत्कर्ष की सीमा तक पहुँचाते थे। इन सब आदर्शवादी जीवन को तो अब धूल–धूसरित कर दिया। कहाँ हैं वे लोग, वह समाज व राष्ट्र के सुचरित्र नागरिक एवं सम्मानित नेता जो भारतीय वैदिक संस्कृति को ऊँचाई तक ले जाने में सक्षम थे।

मानव ही निर्माण कर सकता है और मानव ही विनाश कर सकता है। मनुष्य क्यों नहीं वैदिक युग की संस्कृति का अनुसरण करके पति–पत्नी के रूप में संयमी जीवन से, तप से, पवित्र यौनाचार से अच्छी एवं संस्कारी सन्तान देकर समाज एवं राष्ट्र को अनुगृहीत करे। यही आज के समाज की तस्वीर होनी चाहिये। भोगवादी मानसिकता से तो मनुष्य सर्वदा अतृप्त ही रहता है वरंच जो योगी है वह संसार के प्रत्येक परिवर्तन में स्वयं को सुखी रख सकता है। इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखते हुए, कुवासनाओं एवं अन्धविश्वास में जकड़े हुए समाज को जाग्रत करना, सुधारना, बच्चे–बच्चे तक अच्छे विचारों का संदेश पहुँचाना, स्कूलों में वेद पढ़ाना, वेद–शास्त्रों के शुद्ध अर्थों को समझकर उसके सिद्धान्तों को जन–जन में उपदेश करते हुए जीवन–यात्रा के विभिन्न पड़ावों को तय करना आज आर्य–धर्म की एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती के मिशन की मांग भी है।

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद्भद्रं तन्न आ सुव॥ —यजु० अ० ३०, मन्त्र-३

अर्थात्—"हे सकल जगत के उत्पत्ति कर्त्ता, हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिये। जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ है, वह हम सब को दीजिये। जैसे एक शायर ने भी कहा है—"मेरे अल्लाह हर बुराई से बचाना मुझको, नेक जो राह हो उस राह पे लाना मुझको।"

स्वामीजी का मतलब सिर्फ हमारे व्यक्तिगत जीवन से नहीं था। वे चाहते थे, हम इस मन्त्र से प्रेरणा लेकर हमारे परिवार, समाज, राष्ट्र एवं सम्पूर्ण विश्व को उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकें। सबको सन्मार्ग और आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करें। वेद निश्चय ही ईश्वरीय ज्ञान है जो दुःख की निवृत्ति कर सुख प्रदान करता है। परमात्मा ही वेद या श्रुति का मूल स्तोत्र और प्रतिपादक है। वेद की पावन आज्ञाओं को आचरण में लाना, आत्म-निरीक्षण द्वारा असत् से सत् की ओर चलना, स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव को सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानिता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार—यह सब भेद खोलती है स्वामी दयानन्द जी पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" जो कि वेदों का निचोड़ है।

"वेद की शिक्षा निराशा, निरुत्साह एवं आलस्यमय वैराग्य की नहीं है। वेद की शिक्षा उत्साही, विजय सम्पन्न एवं बली होकर प्रशंसित बनना सिखलाती है।" —ऋग्वेद, १०।८४।७।।

जिस परमेश्वर ने इस सृष्टि को रचा है, वही जगदीश्वर अपने आज्ञाकारी एवं पुरुषार्थी सेवकों का क्लेश हरण करके आनन्द देता है। परमेश्वर के सामीप्य से दुःख-दोष छूट कर मानव पवित्रात्मा हो जाता है। वेद ज्ञान का भंडार हैं। वेदों में मानव-जीवन के लिये आवश्यक आध्यात्मिक, इहलौकिक और व्यवहारिक ज्ञान विद्यमान हैं। वेद परमात्मा की अनुभूति एवं स्थाई आनन्द देता है। **सृष्टि के विरुद्ध न जाकर हम सब इस दुर्लभ मानव-जीवन को संयम, तप आदि से सफल सुखमय बनावें।**

प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः।
उपाकृतं शशमानं यदस्थात् प्रियं देवानामप्येतु पाथः॥

–अथर्ववेद, काण्ड-२, सूक्त-३४, मन्त्र-२॥

भावार्थ–विद्वान् महात्मा लोग वेद द्वारा संसार की वृद्धि और स्थिति का कारण विचार कर सबको सत्य मार्ग का उपदेश करें जिससे मनुष्य ईश्वरकृत रक्षासाधन, ज्ञान, खान-पान आदि पदार्थों का [जो सब को सब जगह सुलभ है] यथावत् ज्ञान प्राप्त कर दुःखों से मुक्त होकर आनन्द भोगें।

आधुनिक स्त्री-पुरुष वैदिक संस्कृति से अनभिज्ञ

–मृदुला अग्रवाल

आज के तथाकथित आधुनिक व्यक्तियों से भरा हुआ, जीवन की जटिल समस्याओं वाल समाज, जिसमें पति-पत्नी जैसे पवित्र रिश्ते की दुर्गति व बेकदरी हो रही है। संयम, अनुशासन, इन्द्रिय निग्रह, आत्मिक एवं शारीरिक बल प्राप्त करना और सद्विचार इत्यादि से अपने आध्यात्मिक उत्थान तथा सामाजिक उन्नति को छोड़कर, उसकी जगह दुर्व्यसन, दुर्गुण, शराब-जुआ, भ्रष्ट-विचार, कामान्धता, चरित्रहीनता जैसे आसुरी प्रवृत्ति वाली मनोवृत्तियों को प्रश्रय दिया जा रहा है। पति-पत्नी अपने गृहस्थ-जीवन का सफल निर्माण नहीं करके, उसे अपने गलत एवं पाप-आचरणों से पतन की ओर अग्रसर कर रहे हैं।

भारतीय संस्कृति के ढाँचे में ढली हुई सुलक्षणा स्त्री, पति को परमेश्वर मानकर उसकी सेवा सुश्रुषा करती हो, अपनी सन्तान को अच्छे एवं धार्मिक सुसंस्कारों से प्रेरित कर राष्ट्र के सुव्यवस्थित तथा दृढ़ विचारोंवाला भावी नागरिक के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहती हो, गृहस्थ के सम्पूर्ण कर्त्तव्यों को भली-भाँति निभा रही हो तो आज का समाज उसे पुराने ख्यालात की औरत कहता है। दूसरी ओर अतीव प्रशंसित रूप गुण वाला पुरुष, अपनी मर्यादा में रहकर, सुसंकारों द्वारा अपने गृहस्थ के दायित्व को सुचारु रूप से चला रहा हो तो उसी की आधुनिक ख्यालात वाली पत्नी उसे आज के समाज के योग्य ही नहीं समझती। उसे यथोचित सम्मान भी नहीं देती।

कुछ तो दम्पती ही विलक्षण से होते हैं जो कि आधुनिक समाज की

कुरीतियों एवं कुप्रथाओं के शिकार बन चुके होते हैं। अपने बच्चों की देख-रेख की अवहेलना करते हुए जुआ खेलना, खराब पीना, किसीकी पत्नी-किसका पति-किसके साथ किन-किन पापाचरणों में प्रविष्ट हो जाना, उनके लिये तो स्वाभाविक सामाजिक जीवन हो जाता है। सद्विचार एवं सदाचरण की तो उनके जीवन में कोई अहमियत ही नहीं रहती।

ऐसे दम्पति तो जगत् को ही सर्वथा झूठा सिद्ध कर देते हैं। इस संसार को बिना ईश्वर के अपने-आप स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ मानते हैं। मिथ्या ज्ञान का अवलम्बन करके, न पूर्ण होने वाली कामनाओं के सहारे संसार का अपकार ही करने को उद्यत रहते हैं।

गीता में इसका कैसा शुद्ध विवरण है–

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥

–गीता, अध्याय-९, श्लोक-१२॥

अर्थात्–वृथा आशा, वृथा कर्म और वृथा ज्ञानवाले अज्ञानीजन राक्षसों के और असुरों के जैसे मोहित करने वाले तामसी स्वभाव को ही धारण किये हुए हैं। विवाह तो एक मंगलकृत्य है, जिसका परिणाम 'प्रसन्नता' है। वेदों में विवाह एवं स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों का इतना सुन्दर एवं विस्तृत वर्णन है। वेदों के अनुसार, जब स्त्री से प्रसन्न पुरुष और पुरुष से प्रसन्न स्त्री होवे, तभी गृहाश्रम में निरन्तर आनन्द बढ़े।

स्यूमना वाच उदियर्ति बह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत्॥

–ऋग्वेद, मन्त्र १। अ० १६, सू० ११३, मन्त्र १७॥

भावार्थ–[जब स्त्री-पुरुष सुहृद्भाव से परस्पर विद्या और अच्छी शिक्षाओं को ग्रहण कर उत्तम अन्न, धनादि वस्तुओं का संचय करके, सूर्य के समान धर्म-न्याय का प्रकाश कर सुख में निवास करते हैं, तभी गृहाश्रम में पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं]

वैदिक संस्कृति ही है जो विवाह-मण्डप की यज्ञवेदी से उठकर नव-दम्पति को एक-दूसरे के प्रति हँसते-मुस्कुराते, पवित्र एवं आनन्दमय जीवन की ओर प्रवाहित करती है। धर्मयुक्त बन्धन में बंधना, दिव्यगुणों वाले पतिव्रत और

स्त्रीवत् रूप धर्म से संस्कार किए हुए प्रत्यक्ष नियम का पालन करना गृहस्थाश्रम की पहली सीढ़ी है। वेदशिक्षा युक्त वाणियों से एक-दूसरे को प्रशंसित करें। जल के तुल्य सरलतापूर्ण व्यवहार से उत्तम पति-पत्नी बनकर, सूर्य तथा चन्द्रमा की दीप्ति से सुशोभित होकर, अपने जीवन को प्रकाशित करें।

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय।
अग्निष्ट वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयांगिरस्वद् ध्रुवा सीद। –यजुर्वेद, अध्याय-१३, मन्त्र-१९।।

भावार्थ–[पुरुषों को योग्य है कि अपनी स्त्रियों के सत्कार से सुख और व्यभिचार से रहित होके, प्रीति पूर्वक आचरण और उनकी रक्षा निरन्तर करें और इसी प्रकार स्त्री लोग भी रहें। अपनी स्त्री को छोड़ अन्य स्त्री की इच्छा न पुरुष और न अपने पति को छोड़ दूसरे पुरुष का संग स्त्री करे। ऐसे ही आपस में प्रीतिपूर्वक ही दोनों सदा वर्ते]

हे अग्नि के तुल्य तेजस्विनी स्त्री एवं प्राण व जल के तेजस्वरूप पुरुष! आपस में सर्वथा विरोध को त्यागकर अग्नि के समान प्रकाशमान गृहस्थाश्रमरूप यज्ञ को प्रयत्न के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार से मंगलकारी बनावें।

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना धर्ममच्छ।
–सामवेद, उत्तरार्चिक, मन्त्र-१७५२

भावार्थ–[हे स्त्री और पुरुष! प्रातः बेलाओं की मुख्य यज्ञाग्नि प्रज्वलित है। ज्ञानीजन परमेश्वर को प्राप्त करने वाली स्तुतियाँ करते हैं। तुम लोग भी इस गृहस्थ आश्रम में यज्ञ को पूरा करने के लिए आओ]

प्रत्येक नर-नारी अगर वैदिक शिक्षाओं का अनुसरण करके सुपथ पर चलें तो पतित हुए इस समाज का सुधार भी हो सकता है। मनुष्य का शरीर धारण कर, स्वयं और स्वयं की सन्तान को, उत्तम स्वभाव, धर्म, योगाभ्यास तथा विज्ञान का सम्यक् ग्रहण करके मुक्ति सुख के लिये प्रयत्न करते हुए, मानव-जन्म को सफल बनावें। मनुष्य जन्म कितना दुर्लभ है। प्रारब्ध के भोग तो मनुष्य एवं पशु दोनों ही भोगते हैं। परन्तु नवीन कर्म (अच्छे या बुरे) अपने विवेक के अनुसार, करने का अधिकार तो भगवान ने सिर्फ अपनी सबसे उत्तम कृति "मानव" को ही दिया है। भला ऐसे दुर्लभ जन्म को अपनी सात्विक

प्रवृत्तियों से, आसक्तिरहित कर्मों के द्वारा सफल व सुन्दर, सुखमय न मधुमय, बनाने के बजाय उसे गर्त में ढकेल कर उसकी दुर्दशा कर देना कहाँ की बुद्धिमानी है।

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहि गावा॥

–तुलसीकृत राम–चरित मानस, उत्तरकांड, दो–४३

मन को पापों से बचाओ

संकल्प, विकल्प, नेकी, बदी, पाप, पुण्य इन सबका आधार मन ही है। मन में ही भले बुरे विचार उत्पन्न होते हैं, इसलिये पाप का मूल भी मन ही है, सर्वप्रथम मन में ही पाप पनपता है। उसके पश्चात् वाणी में आता है, पुनः शरीर पर अपना प्रभाव जमाता है। इसलिए उपनिषद्कार कहते हैं कि–

यद् मनसा ध्यायते तद् वाचा वदति, यद् वाचा वदति
तत्कर्मणा करोति यत्कर्मणा करोति तदभि सम्पद्यते!

अर्थात्–जो मनुष्य मन में विचार करता है, वह वाणी से बोलता है, जो वाणी से बोलता है उसके अनुसार कर्म करता है, जो कर्म करता है उसके अनुसार दुःख सुख रूप फल को प्राप्त करता है। इसलिये सर्वप्रथम मन को पापों से बचाना मानव का परम कर्त्तव्य है। मन के मुख्य रूप से आठ पाप या मैल हैं, जिनसे सर्वदा बचने का प्रयत्न करना चाहिये–यथाः

(1) प्रथम मल राग कालुष्य है, इसका अर्थ यह है कि जो सुख मुझे किसी प्रकार से प्राप्त है, वह सदा बना रहे, किसी प्रकार और कभी भी यह समाप्त न होने पाये, यह जो भावना है, इसे राग कालुष्य कहते हैं, इससे चित्त चञ्चल हो जाता है, और किसी बड़े कार्य के करने में असमर्थ हो जाता है, चञ्चलता का मैल मन से तब धुलता है जब, वित्तेषणा, पुत्रेषणा, लोकेष्णा, मन से मिट जाती है।

(2) दूसरा मल द्वेष कालुष्य है, मन में वैर भावना का होना और क्षमा भावना का न होना। इस वैर भाव से मनुष्य सदा दूसरे का अहित चिन्तन करता और दूसरों से कठोरता का व्यवहार करता है। जिससे मन का मैल बढ़ता ही जाता है।

(3) तीसरा मल अभिमान कालुष्य है, इसके कारण मनुष्य अपने आपको ही भूल जाता है और शीघ्र ही विनाश के मुंह में चला जाता है। कहा भी है–

जिन्होंने गर्व किया मिट गये उनके वंश।
तीनों कुल तुम जान लो रावण कौरव कंस॥

(4) चौथा क्रोध कालुष्य है, इसके बढ़ जाने से मानव सत्य विवेक को ही खो बैठता है। माता, पिता गुरु, बहिन, बेटी, पति, पुत्र, मित्र, अपना, पराया सबका ज्ञान जाता रहता है, क्रोधान्ध मनुष्य न करने योग्य घृणित कार्यों को भी कर गुजरता है।

(5) पांचवां है परापकार चिकीर्षा कालुष्य, अर्थात् दूसरों के बुरा करने की भावना करना, अथवा दूसरों के दुख देने की नीयत रखना, अपना कोई लाभ हो या न हो, पर दूसरे की हानि अवश्य करनी है। ऐसे मनुष्य का मन शुद्ध कैसे हो सकता है?

(6) छठा है ईर्ष्या कालुष्य–दूसरों के धन, भवन, पद, एवं गुणों को देखकर जलते रहना इसे ईर्ष्या कालुष्य कहते हैं, आज इसी जलन के कारण विश्व दु:ख सागर में डूब रहा है।

(7) सातवां है असूया कालुष्य–दूसरों के गुणों को अवगुण रूप में देखना अथवा भलाई को भी बुराई के रूप में कहते फिरना, यथा किसी धर्मात्मा को पाखण्डी और व्रती को दम्भी कहना, या सदाचारी पर भी झूठे कलंक लगाना।

(8) आठवां है आमर्ष कालुष्य–इसका तात्पर्य है किसी से अपमानित होकर या कठोर वचन सुनकर उसे सहन न करना और बदला लेने के लिये कटिबद्ध हो जाना।

उपरोक्त आठ मन के दोष वा पाप हैं जिनके द्वारा कोई भी व्यक्ति पाप में प्रवृत्त होता है, अत: मन के इन दुर्गुणों व पापों से अपने आपको बचाना परम श्रेयस्कर है इसलिए वेद उपदेश देता है कि मानव दृढ़ता के साथ मन के पापों का निवारण करे, और उन्हें मन से बाहर कर दे और ऊँचे स्वर से कहे–

परोपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि
परेहि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि संचर, गृहेषु, गोषु मे मन:।

भावार्थ–ए मेरे मन के पाप दूर हट जा, तू मुझे क्यों पापों और बुराईयों की ओर ले जा रहा है। चल दूर हो, कहीं वृक्षों और वनों में जाकर वास कर, मैं तुझे सर्वथा नहीं चाहता क्योंकि मेरा मन घर के कार्यों में और गौओं की सेवा में लगा है।

ईश्वर पूजा का वैदिक स्वरूप (पं० रामचन्द्र देहलवी)

मैं आपको बता रहा हूँ कि मूर्तियों का सही उपयोग कीजिये, गलत इस्तेमाल छोड़ दीजिये।

मान लीजिये आपका एक बच्चा है। उसके पास एक घड़ी भी है। आपका बच्चा घड़ी पर चावल रखने लगे, दाल डालने लगे, लड्डू रखने लगे। जलेबियाँ चढ़ाने लगे, रायता उस पर डाल दे। सब चीज उस पर डालने लगे तो उसे ऐसा करते देखकर क्या करेंगे? क्या आप उसे डाटेंगे नहीं, मना नहीं करेंगे। अरे बेवकूफ घड़ी बिगाड़ेगा? क्यों इस पर यह चीजें डाल रहा है? बच्चा उत्तर दे कि पिताजी यह चलती है तो मैं इसे खिला पिला रहा हूँ? क्या हर्ज है? क्या यह कोई खाती है? क्या यह रायता पानी पीती है जो तू इस पर डाल रहा है।

आप घड़ी के बारे में इतना तर्क कर रहे हैं। लेकिन मूर्ति के बारे में यह तर्क क्यों नहीं करते? बुद्धि का प्रयोग हमें दोनों जगह करना चाहिये। जैसे घड़ी के ऊपर जलेबी चढ़ाना बेकार है वैसे ही मूर्ति के ऊपर कुछ भी चढ़ाना बेकार है। तो मूर्ति के ऊपर कोई चीज चढ़ाने या उसके सामने हाथ जोड़ने, लेट जाने, या नाचने से न भगवान् की पूजा होती है। न धर्म की रक्षा।

हमें ईश्वर व प्रकृति दोनों का ही सही उपयोग करना चाहिये। ईश्वर के गुणों को हम धारण करें, और श्रेष्ठ बनें। प्रकृति के पदार्थ का मनुष्य मात्र के भले के लिये प्रयोग करें। प्रकृति का गलत प्रयोग हमें नुकसान पहुंचायेगा।

किसी फारसी के शायर ने लिखा है:

अगर सदसाल गब्र आतिश फरोजद,

चूंयकमद अन्दरां उफयद बिसोजद।

गब्र कहते हैं आग के पुजारी को। यदि आग का पुजारी सौ साल तक आग को रोशन रखता रहे और एकदम उसमें कूद पड़े तो आग उसे फौरन जला देगी। आग जरा भी लिहाज नहीं करेगी। आग प्राकृतिक पदार्थ है। उसका गलत प्रयोग किया गया तो उसने नतीजा दे दिया।

प्रतिदिन लोग अंधविश्वास या यूं कहिये कि नासमझी से काम करने के कारण अपने जीवन से हाथ धो बैठते हैं। क्या ऐसे लोग गंगा और यमुना मैया की जाय बोलत हुये नहीं चले जाते हैं। तो तैरने की विद्या सीखे भी

नहीं हैं और नदियों के पानी में घुस जाते हैं, बड़े जोर से गंगा मैया की जय जमुना मैया की जय चिल्लाते हुए लोग चले जाते हैं? कोई नहीं रोकेगा ऐसे नासमझ लोगों को। गंगा मैया या यमुना मैया ऐसे नासमझ लोगों की प्रतिक्षा में है कि वे आयें और बिना तैरने की विद्या सीखें मुझ में घुसें। वह उन्हें पानी में ही दबोच लेगी और अपने बेटों, जल जन्तुओं, मछली, कछुओं आदि को खिला देगी। अपने नादान व ना समझ बेटों का वह थोड़ा सा भी लिहाज नहीं करेगी, उन्हें छोड़ेगी नहीं। सैंकड़ों बार ऐसे दु:खद समाचार सुने जाते हैं कि अमुक युवक डूब गया, इस मुहल्ले को इकलौता बच्चा डूब गया।

प्राकृतिक चीजों के दुरुपयोग या ना समझी से किये उपयोगों का यह फल है।

इसके विपरीत यदि कोई कस्साब (कसाई) पशुओं का वध करके आया है खून से सना हुआ है। जमुना को मैया भी नहीं कहता। बल्कि उसे कुछ और ही नाम से पुकारता है, किन्तु तैरने की विद्या जानता है। और उसे जानकर पानी में घुसता है। तो उसको यमुना या गंगा मैया अपनी छाती पर तैरा देगी। और वह बखूबी पानी में अपने करतब दिखाता रहेगा। कभी चित तैरेगा, कभी पट। गंगा या यमुना उसका कुछ न बिगाड़ सकेगी। क्यों? क्योंकि वह तैरने की विद्या सीखकर पानी में घुसा है। वह उसका भक्त नहीं है तो भी नदी उसका लिहाज करती है। परन्तु जो नासमझ श्रद्धालु है, चाहे वह दशाब्दियों से उसके भक्त हों उसके साथ कोई लिहाज नहीं करेगी और उन्हें डुबो देगी।

इसी प्रकार जो ईश्वर की उपासना, बिना उसके गुण, कर्म व स्वभाव जाने, अन्धाधुन्ध करते हैं उनको किंचित्मात्र भी ईश्वर से लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव से परिचित होकर अपने को लाभान्वित करना चाहिये। यही उसकी उपासना है, पूजा है और यही उसकी भक्ति है।

जड़ मूर्ति से पूजने से तो जड़ता के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं हो सकता।

(महान ज्ञान, बल, आनन्द आदि गुणों का भण्डार ईश्वर चेतन वस्तु है)

'वेद प्रकाश सम्बन्धी घोषणा'

फार्म-4

1.	प्रकाशन का स्थान	:	4408, नई सड़क, दिल्ली
2.	प्रकाशन की अवधि	:	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	:	अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-32
	क्या भारत का नारिक है	:	हाँ
4.	मुद्रक का पता	:	अजय प्रिंटर्स, 1586/C-13,
		:	नवीन शाहदरा एक्स,
		:	दिल्ली-32
5.	प्रकाशक का नाम	:	अजयकुमार
6.	क्या भारत का नागरिक है	:	हाँ
7.	प्रकाशक का पता	:	4408, नई सड़क, दिल्ली
8.	सम्पादक का नाम	:	अजयकुमार
	क्या भारत का नागिरक है	:	हाँ
	सम्पादक का पता	:	16 जयपुरिया एन्क्लेव,
		:	कौशाम्बी, गाजियाबाद-201010
उन व्यक्तियों के नाम व पते		:	अजयकुमार
जो समाचार पत्र के स्वामी		:	16 जयपुरिया एक्लेव,
हों तथा जो समस्त पूँजी के		:	कौशाम्बी, गाजियाबाद-201010
एक प्रतिशत से अधिक के			
साझेदारी या हिस्सेदार हों।			

मैं अजयकुमार एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी विश्वास के अनुसार ऊपर दिये हुए विवरण सत्य है।

-अजयकुमार, प्रकाशक
वेदप्रकाश